© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 01 | January – March 2017

# लोकगाथा की विशेषताएँ

डॉ राम मेहर सिंह ( एसोसिएट प्रोफेसर ), हिन्दी विभागए छोटूराम किसान स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, जीन्द।

ISSN : 2348-5612 © URR

लोकगाथा की विशेषताएँ के सम्बन्ध में प्रायः सभी भारतीय तथा विदेशी विद्वान एकमत हैं। क्योंकि विश्वभर की सभी लोकगाथाओं की विशेषताएँ समान हैं। यही विशेषताएँ लोकगाथाओं को अलंकृत–काव्य से पृथक् करती हैं। इन्हीं विशेषताओं के आधर पर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि अमुक गीत लोकगाथा है अलंकृत काव्य नहीं। राबर्ट ग्रेव्स ने लोकगाथाओं की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई है। ;40द्ध डा0 कृष्णदेव उपाध्याय ने भी इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख किया हैः ;41द्ध

1. अज्ञात रचनाकार
2. प्रामाणित मूलपाठ की कमी
3. संगीत तथा नृत्य का साहचर्य एवं सहयोग
4. स्थानीयता की गंध
5. मौखिक परम्परा
6. अलंकृत शैली का अभाव
7. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव
8. रचनात्मकार के व्यक्तित्व का अभाव
9. दीर्घ–कथानक की विद्यमानता
10. टेक पदों की पुनरावृत्ति
11. इतिहास की संदिग्ध्ता

1. अज्ञात रचनाकार :–

लोकगाथाओं का रचनाकार कौन है? व्यक्ति या समूह? इस सम्बन्ध मे पर्याप्त चर्चा हो चुकी है। उस चर्चा से निष्कर्ष यह निकला था कि लोकगाथाओं का रचनाकार अज्ञात होता है। आज तक लोकगाथाओं के रचनाकार के विषय में किसी प्रकार का उल्लेख हमें नहीं मिलता। उत्तरी भारत में अनेक प्रसिद्वलोकगाथाएँ है, यथा आल्हा, ढोला–मारू, हीर–राँभफा, विजयमल, सोरठी, लोरिकी, बिहुला, गोपीचन्द, भरथरी, नयकवा बनजारा आदि। परन्तु इनके रचनाकार के विषय में अभी तक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। वास्तुतः रचनाकार का अज्ञान होना एक स्वाभाविक तथ्य है। यह भी पता लगाना कठिन हो जाता है कि अमुक लोकगाथा की रचना किस काल में हुई । राबर्ट ग्रेव्स के मतानुसार ''आज के युग में किसी भी रचनाकार के अज्ञात होने का तात्पर्य स्पर्ष्ट है कि वह रचनाकार अपनी रचना को हेय समभफता है। यही कारण है कि वह उसे समाज में प्रकट करने में सकुचाता है। परन्तु आदिम समाज में लोकगाथाओं के रचयिता अपनी लापरवाही के कारण अन्ध्कार के गर्त्त में दबे रह गए।'' ;42द्ध

लोकगाथाएँ मूलतः समाज के क्रमिक विकास की द्योतक हैं तत्कालीन सामाजिक वातावरण इन लोकगाथाओं में खुलकर अभिव्यक्त हुआ है। अतः इनसे समाज की अवस्था का तो अुनमान कर लिया जाता है परन्तु किसी व्यक्ति के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने भी लिखा है कि लोकगीतो के रचनाकार अज्ञात स्त्री तथा पुरूष। ;43द्ध

वैसे लोकगाथाओं का अन्य कविताओं की भाँति रचनाकार तो अवश्य होगा जिसने अपने कबीले के लोगों के साथ मस्त होकर गीत गाया होगा। परन्तु उसने लेखक होने का दावा नहीं किया। गाथा को ही विशेष महत्त्व दिया। एक व्यत्तिफ के गीत में आगे चलकर न जाने कितनी कड़ियाँ जुड़ जाती है यह किसी को ध्यान नहीं रहता । नृशास्त्री तथा पुरतत्त्ववेत्ता भी इस सम्बन्ध में मौन हैं। अतः किसने इनका निर्माण किया, यह निश्चित रूप से हीं बतलाया जा सकता। वास्तव में ''लोकगाथाओं के अज्ञात प्रेरणाओं ने एक गंगा बहा दी जिसमें समाज की आकांक्षाएँ गुण–अवगुण, अपधराओं के समान अन्मर्निहित होते गए और क्रमशः लोकगाथा की व्यापकता में समाज की आत्मा मुखरित होती गई। ;44द्ध

अतः यह स्पष्ट है कि लोकगाथा का रचनाकार अज्ञात होता है।

2. प्रामणिक मूलपाठ की कमी :–

जिस प्रकार से लोकगाथाओं के मूल रचनाकार का पता लगाना कठिन है उसी प्रकार लोकगाथाओं के मूलपाठ का पता लगाना भी अत्यन्त कठिन है। क्योंकि गाथा किसी समुदाय की सम्मिलित रचना होती है उसका कोई एक रचनाकार नहीं होता । इसीलिए उसका कोई मूल प्रामाणिक पाठ भी नहीं होता। रचनाकार का ही जब पता नहीं तब उसके मूल पाठ की प्रमाणिकता का पता लगाना तो अत्यन्त ही कठिन है।

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 01 | January – March 2017

लोकगाथा समाज की रचना है वह समाज की सम्पत्ति है समाज का प्रत्येक व्यत्तिफ उसे अपना समभफता है। अपनी इच्छानुसार वह उसमें अपनी नई कड़ियाँ जोड़ देता है। इतना ही नहीं विभिन्न प्रांत में प्रचलित होने के कारण उनमें अनेक भाषाओं के शब्दों का निःसंकोच प्रवेश हो जाता है। इस प्रकार उसकी आकार–वृद्विके साथ–साथ उसकी भाषा में भी परिवर्तन हो जाता है। अतः लोकगाथाओं में लोककवि द्वारा समय–समय पर परिवर्तन तथा परिवर्द्वन किया जाता रहा है। यह भी संभव है जैसे–जैसे यह नए–नए लोककवियों के पास जाता है वैसे–वैसे इसमें पुराने पद निकलते चले जाते हैं और नए–नए जुड़ जाते है। विभिन्न लोककण्ठों से निसृत होने के कारण लय और संगीत में भी अन्तर आ जाता है। टेक पद बदल जाते हैं। गाने की ध्ुन भी बदल जाती है। यहाँ तक कि पात्रा तथा पात्रा के चरित्रा भी बदल जाते हैं। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता है वैसे–वैसे लोकगाथाओं की भाषा में परिवर्तन होता जाता है। यह परिवर्तन इतन अध्कि हो जाता है कि उस मूल गाथा का मूल रचनाकार भी उसे सुनले तो वह स्वयं को नहीं पहचान सकेगा । ;45द्ध

यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि आज के युग में प्रामणिक मूलपाठ की कमी को भंयकर दोष माना जाता है जब कि यह लोकगाथाओं का आवश्यक गुण बन गया है। लोकगाथा की यह मौखिक परम्परा एक नदी के समान सदियों से बहती चली आ रही है। न जाने कितने नदी नालों ने आकर असके आकार को इतना विस्तृत कर दिया है कि इसके मूल स्वरूप को पहचानना कठिन हो गया है। अतः किसी भी लोकगाथा का निश्चित और अन्तिम स्वरूप नहीं प्राप्त होता। इसके अनेक पाठ होते हैं। परन्तु किसी पाठ का मूल्य दूसर पाठ से किसी भी प्रकार कम नहीं। प्रो0 चाइल्ड ने कई लोकगाथाओं का सम्पादन किया है। कई लोकगाथाओं के एक से लेकर इकीस पाठ तक मिले हैं। परन्तु किसी एक का महत्व दूसरे से किसी प्रकार भी कम नहीं। इसी प्रकार पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने भी ''भगवतीदेवी'' शीर्षक लोकगाथा के तीन –चार पाठ संकलित किए हैं उनमें कौन सा पाठ मूल और शु( है यह कहना अत्यन्त ही कठिन है।

राबर्ट ग्रेव्स ने स्पष्ट लिख है कि लोकगाथा का मूल तथा शु( पाठ नहीं होता। गायक अपनी इच्छानुसार उसमें परिवर्तन करता रहता है। अतः किसी एक पाठ को शु( नहीं माना जा सकता । ;46द्ध

आल्हा के विषय में कहा जाता है कि उसका मूल लेखक जगनिक था। जगनिक ने बुन्देलखंडी बोली में इसकी रचना की। इस रचना में आल्हा और ऊदल के पराक्रम एवं शौर्य का वर्णन था। आकार भी इसका पहले बहुल छोटा रहा होगा। इसकी अब कोई हस्तलिखित मूल प्रति तो नहीं मिलती। परन्तु आज जिस रूप में यह रचना हमें मिलती है, उसका आकार पहले से कई गुना अध्कि है। न जाने कितनी घनाएँ इसमें पीछे से जोड़ दी गई है। हो सकता है कि इन घटनाओं का वर्णन मूल 'आल्हा खंड' में रहा ही न हो। इतना ही नहीं अनेक भाषाओं में इसके पाठ उपलब्ध होते है। भोजपुरी और कत्रौजी पाठ तो प्रकाशित भी हो गए है।

'बिहुला' का भोजपुरी रूप कुछ और है और मैथिली तथा बंगला रूप कुछ और। 'बिहुला भोजपुरी लोकगाथा में ब्राह्मण पुरूष है परन्तु मैथिली तथा बंगला में विषहरी रूप स्त्राी तथा देवी है। गोपीचन्द की गाथाा के भी कई पाठ मिलते हैं। डा0 ग्रियर्सन ने दो पाठों का संकलन ;मगही तथा बंगला में द्ध किया है। ढोला–मारू का भी यही हाल है।

अतः इस प्रकार की परिवर्तनशीलता के कारण मूल पाठ का मिलना तो अत्यन्त कठिन है। लोकगाथा मौखिक परम्परा होने के कारण जनता की सम्पत्ति है। किटरेज ने सत्य ही कहा है– वास्तविक लोकप्रिय लोकगाथा का कोई रूप नहीं हो सकता है, कोई पाठ नहीं हो सकता। ;प् विससवू जींज ॅ हमदनपदम चवचनसंत इंससंक बंद ींअम दव पिगमक वितउए दव `वबपंस `नजीमदजपब अमतेपवदए जीमल `तम जमगजे इनज जीमतम पे दव जमगजद्ध ;47द्ध

3. संगीत तथा नृत्य का साहचर्य एवं सहयोग :–

अंग्रेजी के बैलेड शब्द की उत्पत्ति लैटिन 'बेलारे' से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है नृत्य करना। अतः बैलेड का अर्थ है वह गीत जो नाचकर गाय जाता हो। यह 'कोरस' है जिसे जन–समुदाय समवेत स्वर में संगीत के साथ गाता है। राबर्ट ग्रेव्स ने सही लिखा है कि उत्तेजना–जनक तथा पुनरावृत्तिमूलक संगीत के बिना गाथा अधूरी है। ;जेम इंससंक पे पदबवउचसमजम ूपजीवनज `द मगबपजपदह `दक तमचमजपजपअम उनेपबद्ध ;48द्ध

संगीत और नृत्य लोकगाथाओं के अनिवार्य जंग है। लोकगाथाओं का महत्त्व ही इसी से है। यही इसकी लोकप्रियता का कारण भी है। लोकगाथाओं की संगीत विध् िभी नितान्त भिन्न है। इसे लोकसंगीत ;थ्वसा . डनेपबद्ध कहते है। इसी संगीत के माध्यम से ही लोकगाथाएँ भावपूर्ण एवं सुमध्ुर बनती है। लोकगायक संगीत के माध्यम से ही गाथाओं को मस्ती से भुफम–भुफम कर गाते हैं। अध्किांश लोकगाथाएँ 'द्रु तगतिलय' में गाई जाती है। यूरोप में भी चारण ;मिन्स्ट्रल्सद्ध ढोल या सितार बजा–बजाकर इन्हें गाते हैं। विशपपर्सी का कथन है किन इन मिन्स्ट्रल्स का अनेक सदियों तक अलग सम्प्रदाय था जो सम्मानित तथा ध्नी व्यत्तिफयों के यहाँ गीतों को गागाकर अपना पेट भरता था ;49द्ध गूमर के मतानुसार कुछ गीत बड़े प्रेम से देर तक गाए जाते थे। यहाँ तक कि मध्यकाल में मृत्यु के अवसर ऐसे नृत्य प्रचलित थे जो धीमी गति से नाचे जाते थे।

गाथाओं का महत्त्व स्वरों के उतार–चढ़ाव पर अध्कि निर्भर करता है। भररथरी तथा गोपीचन्द की लोकगाथाओं को– जिनमें करूणापूर्ण संगीत करता है– गायक स्वरों के माध्यम से ही करूणापूर्ण बना देता है। पंत्तिफ–पंत्तिफ के साथ गायक का स्वर परिवतर्तित होता रहता है, तभी श्रोताओं को आनन्द भी आता है। वर्षा)तु में जब आल्हा गाया जाता है तब गायक

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 01 | January – March 2017

गले में लटके ढोल को भाववेश में पीट–पीट कर गाता है और जैसे–जैसे गाने की गाति तीव्र होती जाती है – ढोल बजाने में भी उसी के अनुरूप तीव्रता आती जाती है। इस प्रकार गायक संगीत के माध्यम से गाथाओं में जीवन पफूँक देता है। अतः किटरेज का यह कथन सत्य है कि गायक
एक वाणी है, व्यत्तिफ नहीं।

गोरखपंथी जोगी सांरगी पर भरथरी और गोपीचन्द की लोक–गाथाएँ गाते है। सारगी जोगियों की वेशभूषा का भी अनिवार्य अंग है। ब्रज तथा भोजपुरी प्रदेश में होली ढाल और भफाल बजा–बजाकर मस्ती में गाई जाती है। अतः वाद्य यन्त्राों का भी लोकगाथाओं में अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहाँ वाद्य–यंत्रा उपलब्ध् नहीं होता वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उल्टा करके लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़ती हैं। उससे एक विचित्रा प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। कहीं–कहीं वे ताली बजाकर–विशेषकर भूफमर के गीतों में –संगीत के अभाव
की पूर्ति करती है। ;50द्ध

प्राचीन भारतीय लोकगाथाओं में नृत्य का समावेश था। धीरे–धीरे आगे यह क्रिया गौण होती गई। आज नृत्य का रूप प्रायः समाप्त–सा हो गया है। परन्तु लोकगीतों एवं लोकनाअयों में नृत्य–क्रिया आज भी विद्यमान है। विशेष रूप से लोकनाटयों–स्वाँग, यात्राा, नाटक और लीलाओं में नृत्य की परम्परा अक्षुण रूप से सुरक्षित है। आधुनिक समय में इन्हीं नृत्यों को लोकनृत्य कहते हैं, जिसकी परिछाया आधुनिक नाटय–गृहों तथा चला–चित्राों में देखने को मिलती है। ;51द्ध

4. स्थानीयता की गंध् :–

लोकगाथाओं में स्थानीयता की गंध् विशेष रूप से पाई जाती है। लोकगाथाएँ अपने समय और स्थान की गंध् लिए रहती है। लोकगाथाएँ किसी भी प्रान्त की क्यों न हो वे अपने सपफर के बाद किसी एक विशेष प्रांत में पहुँच कर वहीं की विशेषताएं धरण कर लेती है। लोकगाथाओं में घटनाएँ चाहे कहीं की हो, कहानी चाहे किसी राजा या उमराव की क्यों न हो, उसमें स्थानीयता का गहरा रंग आ ही जाता है। यही कारण है कि किसी विशेष प्रांत की गाथाओं में वहाँ के जन–जीवन का रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान आदि का स्वभाविक एवं सजीव चित्राण मिलता है। प्रो0 किटरेज के अनुसार लोकगाथाएँ किसी घटना के कारण ही निर्मित होती हैं और इसके निर्माण के साथ ही साथ उस विशेष प्रांत के वातावरण और स्थानीयता का भी उसमें समावेश हो जाता है। ;52द्ध

लोक–गाथाओं की यह स्थानीयता कहीं–कहीं ऐतिहासिकता के चित्राण में भी सहायक होती है। लोक–गाथाओं में स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन पाया जाता है। भोजुपरी के भफमर में 'हरदिया का राजा,' बिहार की गाथाओं में 'बाबू कुँवरसिहं का उल्लेख पाया जाता है। 'लोरिकी' में बिहार के कई नगर एवं गाँवों का वर्णन है। ये गाथाएँ अपने–अपने प्रान्तों से सम्बन्धित होने के कारण वहाँ की स्थानीय विशेषताओं को लिए हैं।

सामाजिक शास्त्रा के अध्ययन की दृष्टि में लोकगाथाएँ बहुत महत्वपूर्ण होती है। इनमें प्रचलित धर्मिक, कुत्यों प्रथाओं या संस्थाओं का भी समावेश हो जाया करता है। सीधे नाथपंथ से सम्ब( गोपीचंद और भरथरी की लोकगाथाओं को हम छोड़ दे तो हमें 'सोरठी' की लोकगाथा के अन्तगर्त नामर्ध्म का उल्लेख मिलता है। ;53द्ध

5. मौखिक परम्परा :–

लोकगाथाएँ मौखिक परम्परा के रूप में आदिकाल से एक नदी की भाँति बहती चली आ रही है। हमारा प्राचीन भारतीय साहित्य प्रांरभ में मौख्यिाक ही था। वेदों की परम्परा भी मौखिक ही थी। वेद की शिक्षा शिष्यों को मौखिक रूप में ही दी जाती थी। लोकसाहित्य उसी प्रकार मौखिक परम्परा का ही साहित्य रहा है। समाज के 'मुख' में इसका आवास हैं। यही कारण है कि इसका लिपिब( रूप नहीं मिलता। अतः मौखिक परम्परा उसकी एक विशेषता बन गई है। लोकगाथा का रूप अक्षुराण तथा सुरक्षित तभी तक बना रहता है जब तक कि यह परम्परा मौखिक बनी रहती है। लिपिब( होते ही उसकी गति और विकास में बाध पड़ जाती है। सिजविक के कथानुसार यदि किसी गाथा को अपने लिपिब( बर दिया तो यह निश्चित है कि आपने उसकी हत्या करने में योग प्रदान कर दिया। जब तक यह परम्परा मौखिक है तभी तक जीवन्त है। अन्यथा नहीं ;54द्ध

यह नितान्त सत्य है कि लिपिब( करने पर लोकगाथाएँ समाज की सम्पति न होकर
किसी विशेष वर्ग की सम्पत्ति बनकर रह जाती । वे एक शब्द बन जाती जिसमें समाज की आत्मा की प्रतिध्वनि नहीं, वे एक तथ्य बन जाती जिसमें सामाजिक विकास का प्रतिबिम्ब नहीं ;55द्ध गूमर ने भी लिखा है कि मौखिक परम्परा किसी गाथा की प्रधन उपलब्ध् कसौटी है। ;56द्ध इस कसौटी के समाप्त होते ही गाथाओं को वृ( में रूकावट आ जाना स्वाभाविक है। उसके पाठ मिश्रित हो जाते हैं। और किसी प्रकार के विकास, परिवर्तन और परिव(र्न की क्षमता उसमें नही रहती । यही कारण है कि आज भी लोक–गाथाओं की लिखित प्रति देखने को नहीं मिलती। कुछ लोक–गाथाएँ इध्र प्रकाशित हुई हैं परन्तु वे उतनी अध्कि लोकप्रिय नहीं हुई जितनी मौखिक। लिखित गाथाएँ लोक की सम्पत्ति न होकर साहित्य की सम्पत्ति हो जाती है। किटरेज का यह मत सत्य है कि लिपिब( लोक–गाथाएँ लोक की सम्पत्ति न होकर की सम्पत्ति हो जाती है। ;57द्ध

भाषा के अध्ययन की दृष्टि से भी जो विविध्ता मौखिक परम्परा के कारण लोक–गाथाओं में मिलती है वह अत्यध्कि महत्त्वपूर्ण है। लोक–गाथाओं में देश के विभित्रा भू–भागों पर अक्षुराण एकात्मकता और एकजातीयता की एक ऐसी भावना

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 01 | January – March 2017

पफैली, जिसमें देश को एक सूख में बाँध् देने की क्षमता है। इसी कारण भोजपूरी बोलने वालों में आल्हा–ऊदल के प्रति उतनी ही आतमीयता है जितनी बुन्देलों में ;58द्ध

6. अलंकृत शैली का प्रभाव :–

हडसन ने काव्य को दो भागों में विभत्तफ किया है:–

;1द्ध अलंकृत काव्य ;च्वमजतल व ि।तजद्ध

;2द्ध संवर्(ित काव्य ;च्वमजतल व िळतवूजीद्ध

अलंकृत काव्य वह कविता है जो किसी एक कवि द्वारा रची जाती है। इसमें रस, अलंकार, गुण आदि की योजना की जाती है। संवर्(ित काव्य वह काव्य है जिसकी वृ( युग–युग द्वारा रचित 'महाभारत' द्वितीय का उदाहरण है। अलंकृत काव्य का कवि अपनी कविता को सुन्दरतम बनाने के लिए विभिन्न अलंकार, रस, रीति, छन्द आदि की अवतारणा करता है। यह रचना प्रयासपूर्वक की जाती है। परन्तु लोकगाथाओं में इस प्रकार की 'टेकनीक' को नहीं अपनाया जाता, उसमें इस 'टेकनीक' का अभाव रहता है। लोकगाथाओं में साहित्यशास्त्रा के नियमों का भी पालन नहीं किया जाता। उसमें इस प्रकार की अलंकृत शैली का अभाव रहता है। लोकगाथा का सौन्दर्य सहज और स्वाभिक होता है जबकि अलंकृत काव्य का सौंदर्य कृत्रिाम होता है। बाल–सौंदर्य और युवसौंदर्य में जो अन्तर है वही लोकगाथा और अलंकृत काव्य में है। लोकगाथाओं की वर्णन –प(ति भी ऐसी सरल और सहज होती है जैसी माँ और शिशु का वर्तालाप। ;59द्ध

पं0 रामनरेश त्रिापाठी ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है– ''ग्राम गीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्रामगीत हृदय का ध्न है और महाकाव्य मस्तिष्टक का '' ;60द्ध ग्रामगीत में रस है, महाकव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य निर्मित......ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार है। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है, ललित्य नहीं केवल माध्र्य है। '' ;61द्ध

लोकगाथा किसी एक कवि कीरचना न होकर की सम्पत्ति होती है। समाज की आदिम अनुभूतियों की सहज अभिव्यत्तिफ इनमें हुई है। यह किसी भी शास्त्रा के बंध्न से मुक्त है। कला की दृष्टि से यह नितान्त अविकसित होती है। राबर्ट ग्रेव्स के कथानुसार ''लोकगाथाएँ कला की दृष्टि से अध्कि विकसित नहीं होतीं। लोकगाथाओं की भावधरा काव्यात्मक बनाने के पहले ही काव्यात्मक रहती है, कल्पना द्वारा कलात्मक बनाने के पहले ही वह कलात्मक रहती है, गाने से पहले ही उसमें संगीतात्मकता रहती है। ;62द्ध ग्रेव्स का यह कथन नितान्त सत्य है। आविकसित कला से ग्रेव्स का तात्पर्य ऐसी कला से है जिसमें छन्द–विधन, अलंकार–विधन आदि का अभाव हो। अतः लोकगाथाओं में अलंकृत शैली का अभाव होना उसकी प्रधन विशेषता है।

7. उपदेशात्मक प्रवत्ति का अभाव :–

जिस प्रकार लोकगाथा में अलंकृत शैली का अभाव रहता है उसी प्रकार उसमें उपदेशत्मक प्रवृत्ति का भी अभाव पाया जाता है। लोकगाथाओं में लोकीजवन का सांगोपांग वर्णन गुण–दोष एवं आकांक्षाओं के साथ होता है। उसमें संस्कृत के 'नीतिशतक' तथा हिन्दी के नीति के दोहों की भाँति नीतिवचन नहीं मिलते। उसमें उपदेश–कथन की प्रदान करने वाली प्रवत्ति पाई जाती है। लोकगाथाएँ कथा का आधर लेकर लोक का प्रतिनिध्त्वि करती हैं। वे सदाचार या नीति की शिक्षा न देकर गुण और दोषों का ब्यौरेवार वर्णन करती हैं। लोकगाथा अपनी कहानी खुद सुनाती है। उसमें रचनाकार की वैयत्तिफ भावना बिल्कुल नहीं रहती। रचनाकार अपने दृष्टिकोण का न तो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है और न उसके विपरीत ही कुछ कहता है। वह लोकगाथा में वर्णित चरित्रों का भी पक्ष नहीं लेता। ;63द्ध

राबर्ट–ग्रेव्स का कथन है कि यदि लोकगाथा का गायक लोकगाथा को नैतिक या उपदेशात्मक बनाता है तो इसका अर्थ स्पष्ट है कि वह समुदाय ;ळतवनचद्ध से विच्छेद करके संस्कृत रचनाओं का पक्ष लेता है। इस पक्षपात के कारण उसमें और समुदाय में एक प्रकार की पृथकत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है। ;64द्ध

ग्रेव्स का उपर्युक्त मत पाश्चात्य लोकगाथाओं पर तो लागू होता है। परन्तु भारतीय लोकगाथाओं पर नहीं। भारतीय लोकगाथाओं में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति कहीं–कहीं पाई जाती है यदपि गायक और समाज में एक प्रकार की अविछिन्नता है। प्रायः भारतीय लोकगाथाओं में शौर्य, प्रेम, देशभत्तिफ, आज्ञापालन आदि के अनेक प्रंसग पाए जाते है। इन आदर्श चरित्रों के त्याग, तपस्या, सतीत्व आदि से शिक्षा तो मिलती ही है। इन आदर्श चरित्रों से हृदय आकर्षित व श्र(ावनत भी होता है, परन्तु यह सब होते हुए भी उपदेश देने की प्रवृत्ति के लक्षण प्रायः नहीं मिलते। गाथाओं के अन्त में लोक मंगल की भावना अवश्य निहित रहती है।

8. रचनाकार के व्यक्तिफत्वं का प्रभाव :–

सिज़विक का कथन है कि किसी भी भाषा की लोकगाथा का सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ गुण उसका व्यक्तित्व नहीं है बल्कि उसकी व्यक्तिफत्व–हीनता है। इसके विषय में मतभेद संभव है। परन्तु हमको तुरंत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचना चाहिए कि रचनाकार कोई व्यत्तिफ था ही नहीं । यह संभव है कि कलात्मक रचनाएँ मौखिक परम्परा के कारण व्यत्तिफहीनता को प्राप्त करले। ;65द्ध

यह निश्चित है कि लोकगाथाओं का आदि रचनाकार अवश्य होता है परन्तु उसकी रचना में उसका व्यक्तित्व दिखाई नहीं पड़ता। लोकगाथाओं में ''मैं'' का तो नितान्त अभाव रहता है। ;66द्ध गूमर ने भी इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 01 | January – March 2017

लिखा है कि परम्परा, विषय–प्रधनता तथा व्यक्तित्व–हीनता से युक्त इन गाथाओं कथानक भी होता है। मौखिक परम्परा के साथ वर्ण्य–विषय की प्रधनता होते हुए भी व्यक्तित्व का पता नहीं चलता। ;67द्ध किटरेज का भी प्रायः यह मत है–''यदि संभव हो जाय कि कोई कथा एक सजग वक्ता के माध्यम के बिना स्वतः अपनी कथा कह सके तो लोकगाथा ऐसी ही कथा होगी।'' ;68द्ध वास्तव में अंलकृत–काव्य में रचनाकार के व्यत्तिफत्व का महत्त्व अनिवार्य रूप से रहता है। वहाँ यह भी कहा जाता कि शैली ही व्यत्तिफत्व है। यही व्यत्तित्व उसे दूसरों की रचनाओं से पृथक करता है। न तो वे वर्तमान में उपस्थित रहते हैं और न भूतकाल में उनकी सत्ता थी हम निश्चित रूप से यह भी नहीं कह सकते कि कभी कोई अस्तित्व रहा हो। ;69द्ध

9. दीर्घ कथानक की विद्यमानता :–

कथानक की दीर्घता लोकगाथाओं की एक और विशेषता है। प्रायः सभी लोकगाथाओं का कथानक विशाल होता है। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भले ही वह महाकाव्य की तुला न कर सके परन्तु आकार की दृष्टि से लोकगाथाएँ महाकाव्य से स्पर्ध कर सकती है। जिस प्रकार महाकाव्य किसी चरित्रा के जीवन का सांगोपांग वर्णन करता है। उसी प्रकार लोकगाथाएं भी कथाचरित्रों के जीवन सांगोपांग वर्णन करती है। यही कारण है कि उनका रूप महाकाव्य की भाँति बृहत् हो जाता है। इसके अतिरित्तफ एक और कारण भी उनकी दीर्घता का है– वह है सम्पूर्ण समाज का सामूहिक सहयोग। क्योंकि प्रत्येक गायक उसमें अपनी कुछ न कुछ कड़ियाँ जोड़ता ही चला जाता है। 'महाभारत' जो आज एक विशाल रूप में प्राप्त होता है वह प्रारम्भ में एक छोटे आकार का 'जयकाव्य' मात्राा ही था।

लोकगाथाओं के कथानक की यह दीर्घता ही उन्हें लोकगीतों से अलग कर देती है। लोकगीतों का आधर छोटा होता है क्योंकि उसमें जीवन के किसी एक अंश की भावपूर्ण व्यंजना रहती है जबकि लोकगाथाओं में सम्पूर्ण जीवन की सांगोपांग अभिव्यत्तिफ। लोकगाथा में कथानक को ही अध्कि महत्त्व दिया जाता है– यही उसकी दीर्घता का प्रमुख और महत्त्वपूर्ण कारण है।

अंग्रेजी में दोनों प्रकार की ;छोटी और बड़े आकार कीद्ध लोकगाथाएँ प्राप्त होती है। परन्तु भारतीय लोकगाथाओं का आकार अध्किांश रूप में विशाल होता है। भोजपुरी आल्हा 620 बड़े समाज के पृष्ठों में प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ में 25 पंत्तिफयाँ हैं। ढोलमारू, विजयमल, सोरठी, भरथरी, गोपीचन्द आदि गाथाओं का आकार भी कम छोटा नहीं । भोजपुरी में कुँवर विजयी सैकड़ों पृष्ठों में प्रकाशित हुई है। डा0 ग्रियर्सन ने विजयमल की अध्ूरी कथा को 800 पंत्तिफयों में प्रकशित किया है। इससे सि( होता है कि लोकगाथाओं का कथानक अत्यध्कि विशाल होता है।

10. टेक पदों की पुनरावृत्ति :–

टेक पदों की पुनरावृत्ति लोकगाथाओं की सर्वप्रधन विशेषता है। टेक पदों से लोकगाथाओं का महत्त्व बढ़ जाता है। क्योंकि एक ही गीत को जितनी बार दुहराया जाता है उसका आनन्द ही बढ़ जाता है। यही टेकपद की आवृति गीत को अध्कि संगीतात्मक बना देती है और श्रोताओं को इससे अध्कि आनन्द आता है।

टेकपदों से तीन लाभ होते हैंः– पहला यह कि, समस्वर के कारण एकरसत। का निर्माण नहीं हो पाता दूसरा यह कि टेकपदों के कारण गायक को साँस लेने का अवसर मिल जाता है। टेकपदों की आवृति से एक बात और भी मालूम हो जाती है कि ये गीत पहले सामूहिक रूप से ही गाए जाते थे। गायक जब एक कड़ी गाता है तब समस्त के लोग एक साथ मिलकर उन टेकपदों की आवृति करते हैं। आजकल जो हम समवेत स्वर में गाने की प्रवृति देखते हैं वह शायद इसी स्वभाव की सूचना देती है। ;70द्ध गूमर तो इन टेकपदों को लोकगाथाओं का महत्त्वपूर्ण तत्व मानता है। वास्तव में यह अत्यन्त ही प्राचीन है। आदिम संस्कारों के अवसर पर जनता द्वारा गाए जाने वाले गीतों से ही इसकी उत्पति हुई है। किटरेज ने भी इसे लोकगाथा की प्रधन विशेषता स्वीकार किया है। ;71द्ध तीसरा लाभ टेक–पदों से यह है कि इनके द्वारा श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। अतः बार–बार आवृति कर अध्कि मात्राा में प्रभाव डालने का प्रयत्न किया जाता है। यही कारण है कि इन गाथाओं को जितना अध्कि गाया जाता है उतनी ही उसकी मनोरमता बढ़ती जाती है।

अंग्रेजी लोकगाथाओं में टेकपदों की आवृति तीन प्रकार की मिलती है ;72द्ध

;1द्ध बर्डन ;ठनतकमदद्ध, ;2द्ध रिप्रेफन ;त्मतिंपदद्ध और 3. कोरस ;बैवतनेद्ध हिन्दी लोकगाथाओं के टेकपदों का इस प्रकार का कोई नामकरण नहीं मिलता। कोरस, वर्डन और रिप्रेफन से बिल्कुल भिन्न है। वर्डन गाथाओं में प्रयुत्तफ उस चरण कहते है जो गाथा की प्रत्येक पंक्ति के पश्चात अन्त में गाया जाता है। यह गाथा के केवल अन्त में ही नहीं गाया जाता । गीत की प्रत्येक पंक्ति के पश्चात एक ही प्रकार के शब्दों का बार–बार 'बर्डन' कहा जाता है।

लोकगाथाओं में कुछ पदों आवृत्ति 'बर्डन' की भाँति प्रत्येक पंक्ति के बाद न होकर थोड़े–थोड़े समय के बाद हो उसे 'रिप्रेफन' कहते है। अर्थात् निश्चित पदावली की निश्चित समय या स्थान के पश्चात पुनरावृत्ति को 'रिप्रेफन' कहते है।;जैम तमतिंपद पे जीम तमचमजमजपवद वि बमतजंपद चेंहम ज तमहनसंत पदजमतअंसेए दक पे जीने वि मितअपबम पद उंतापदह वि जिंद्रंण्द्ध इससे प्रत्येक पद को अलग –अलग समभफने में सहायता मिलती है।

'रिप्रेफन' एक ही पदावली की आवृति होती है जिसे 'वृ(िपरक आवृति' ;प्दबतमउमदजंस त्मचमजमजपवदद्ध कहा जाता है। नृत्य, खेल आदि के समय गाए जाने वाले जनसाध्रण के गान से इनका जन्म हुआ है। लोकगाथा की मौखिक परम्परा में इसकी स्थिति आवश्यक मानी गई है।

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 01 | January – March 2017

'कोरस' उस पूर्ण पद्य ¯;ीवसम `जंद्रंद्ध को कहते है जो लोक–गाथा के प्रत्येक नए पद्य के बाद गाया जाता है।

ये टेकपद कुछ तो सार्थक होते हैं और कुछ निरर्थक। उदाहरण के लिए ब्रज का यह 'रजना' गीत देखिए:–

मेरी जल्दी खबरि सुधि लीजियो रजना।
कोठे ऊपर कोठरी रजना खड़ी सुखावे केस।।
यारू दिखाई दे गयो धरि जोगी को भेष।।
कारी परि गई रजना।
पीरी परि गई रजना।। – मेरी जल्दी खबर .........................
आगरे की गैल में परयो भुजंगी स्याँपु।
लोटै पीट पफनु करै सरक बिलै में जाय।।
मरि गई मरि गई रजना।
पीरी परि गई रजना।। ..........मेरी जल्दी खबर .......................

उपयुक्त गीत में 'मेरी जल्दी खबर' टेकपद सार्थक है। इसे 'रिप्रेफन' कहा जा सकता है। 'वर्डन' का उदाहरण ब्रज के इस 'लाँगुरिया' में देखने को मिल जाता है।

अनोखी मालिनी भैना, करै तौ डरपै काए कूँ।
तेरे हाथ को मूँदरा, लाँगुर दियौ गढ़ाई । अनोखी मालिनी ...........................
तेरे सिर की चूँदरी, भैना लाँगुर दई रँगाई। अनोखी मालिनी.........................
ग ग ग ग ग ग
रस की बीध्यौ लाँगुरा, आई गयो मेरी सेज। अनोखी मालिनी .........................

यहाँ 'अनोखी मालिनी' टेकपद प्रत्येक पंक्ति के साथ आ रहा है अतः इसे 'बर्डन' कहा जा सकता है।

भोजपुरी 'चैता' में हो रामा, आहो रामा, हे राम' ऐसे पद है जिनका कोई अर्थ नहीं। ऐसे टेक–पदों को निरर्थक टेकपद कहा जाता है।

इस प्रकार गाथाओं के इन टेकपदों का विशेष महत्त्व दिखाई देता है।

11. इतिहास की संदिग्ध्ता :–

प्रायः सभी विद्वान इस विषय में एक मज हैं कि लोकगाथाओं में या तो ऐतिहासिकता होताी ही नहीं या उसका इतिहास संदिग्ध होत है। लोकगाथा का रचयिता कोई इतिहास–विशेषज्ञ नहीं होता। न तो उसे इतिहास का ज्ञान है और न उसे इतिहास निर्माण की चिन्ता। वह तो ऐतिहासिक तथा अनैतिहासिक घटनाओं को लेकर लोकगाथाओं की रचना करता है। परन्तु उसके लिए यह अनिवार्य शर्त नहीं कि यदि वह ऐतिहासिक घटना को लेकर चले तो उसका पूर्णरूपेण निर्वाह भी करे। पिफर एक व्यक्ति तो इसका रचयिता होता नहीं। हर समय में हर व्यक्ति कुछ न कुछ अपना जोड़ता ही रहता है। अतः सच्चा इतिहास ;जो प्रारम्भ में रहा होगाद्ध भी समय–समय पर परिवर्तित व सर्व(ित होते–होते भफूठा पड़ जाता है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस लोकगाथा में वर्णित घटना या पात्रा पूर्ण ऐतिहासिक है। बाबू कुँवर, गोपीचन्द, भरथरी, आल्हा आदि का वर्णन इतिहास में मिलता है परन्तु उनसे सम्बन्धित कुछ घटनाओं पर ऐतिहासिक दृष्टि से शंका उत्पन्न की जा सकती है। बिहुला, लोरिकी, बिजयमल, सोरठी आदि गाथाओं की ऐतिहासिकता तो नितांत संदिग्ध है। अतः यह कहना भ्रामक होगा कि अमुक लोकगाथा पूर्ण ऐतिहासिक है।

संदर्भ


- एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना – बैलेड – पृ0 94
- ओल्ड इंग्लिश बैलेड्स – भूमिका – पृ0 36
- इंग्लिश एण्ड स्काटिश पोपुलर बैलेड– एपफ0 जे0 चाइल्ड– इन्ट्रोडक्शन – पृ0 12
- हिन्दी साहित्याकोश ;भाग1द्ध –पृ0 749
- ओल्ड इंगलिश बैलड्स–इन्ट्रोडक्शन– गूमर– पृ0 49–50
- वही – पृ0 50
- ओल्ड इंगलिश बैलड्स–इन्ट्रोडक्शन गूमर–पृ0 51
- इंगिलश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड–इन्ट्रोडक्शन – जी0 एल0 कीटरेज – पृ0 18
- ओल्ड इंगलिश बैलड्स–इन्ट्रोडक्शन – गूमर–पृ0 36
- वही– पृ0 36 – 37

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 01 | January – March 2017

- वही – पृ0 36
- रेलिक्स आव एन्शियन्ट इंग्लिश पोयट्री–विशपपर्सी – पृ0 24
- वही – पृ0 24
- इंग्लिश एण्ड स्काटिक्श पापुलर बैलेड्स–इन्ट्रोडक्शन–एफ0 जे0 चाइल्ड –पृ0 23
- ओल्ड इग्लिश बैलेड्स – गूमर– इन्ट्रोडक्शन – पृ0 53